संस्कृति और सभ्यताओं की हज़ारों साल की कहानी को इसी तरह देखना चाहिए, और आगे बढ़ाना चाहिए। पर, आज मनुष्य के सामने समस्या यह है कि वह इन विभिन्न सभ्यता और संस्कृतियों से क्या ले, क्योंकि आज वह अपने को मनुष्य के रूप में अधिकाधिक देखने लगा है और यह रूप किसी संस्कृति-विशेष से ही सम्बन्धित होता है। इस चेतना ने आज मनुष्य में उस समस्या को जन्म दिया है जिसकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। संस्कृतियों की बात करते ही भारत की, चीन की, ग्रीस की, पश्चिम की, अरब देशों की, और शायद अफ्रीका की भी बात होने लगती है। लेकिन आज यह बात अटपटी लगती है, क्योंकि धीरे-धीरे मनुष्य को ये लगने लगा है कि ये संस्कृतियाँ कितनी ही अलग-अलग हों, आज वह इन सबका उत्तराधिकारी है; इस चेतना को फैलने में समय लगेगा लेकिन ये फैलेगी ज़रूर, क्योंकि यह ईमानदारी से कहना मुश्किल है कि 'मैं' किसी संस्कृति विशेष का ही सदस्य हूँ। विज्ञान और वाणिज्य ने संसार को जिस तरह 'एक' करने की कोशिश की है उससे एक नई चेतना का जन्म होता दिखाई देता है। यही नहीं, आज जब हम मनुष्य के अधिकार की बात करते हैं तो किसी मनुष्य-विशेष की नहीं करते। बात स्त्रियों के अधिकार के बारे में हो, प्रकृति के बारे में हो, या और भी ऐसी बहुत सी बातों के बारे में।

इस नई चेतना का मनुष्य की पुरानी संस्कृतियों से क्या रिश्ता बनेगा और वह आगे के लिए कैसे सोचेगी और किस प्रकार अपना कर्त्तव्य निभायेगी, ये किसी को स्पष्ट नहीं है। लेकिन इस पर सोचना, इसके बारे में बहस करना और इसके संदर्भ के बारे में बात करना हमारा जो हो चुका है और जो होने वाला है उसके प्रति दायित्व तो है ही। इसमें वेदान्त की दृष्टि एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, इसमें शायद ही किसी को संदेह होगा। पर, वह वेदांत न शंकर का होगा, न रामानुज, न मध्व का, न वल्लभ का। अगर हो, तो विवेकानन्द का होगा, दृष्टि को भी नया रूप देना पड़ेगा और आज की दृष्टि यही सत्यवादी चुनते हैं।

❑

वर्तमान के संदर्भ में अतीत की प्रासंगिकता

सागर और भोपाल के बीच रायसेन का जो इलाका है, वहाँ आज से बीस हजार वर्ष पहले या इससे कम-ज्यादा, कुछ लोगों के रहने का, जिन्होंने वहाँ चित्र बनाये हैं, पता लगता है। आदमी अभिव्यक्ति करता है अपने को चित्रों में, आदमी अनेकानेक चीजों में अपने को अभिव्यक्त करता है। चित्र में ही नहीं काव्य में भी, संगीत में, दर्शन में, साहित्य में बहुत सारी चीजों में; तो ये अभिव्यक्ति की परम्परा क्या है? आदमी क्या करना चाहता है? क्या कहना चाहता है? जब हम इस पर विचार करते हैं, तो एक दरवाजा खुलता है। हम बहुत पीछे जाते हैं कि आखिर परम्पराओं का प्रारम्भ कहाँ से हुआ? ये जो अभिव्यक्ति की परम्पराएँ हैं, ये कहाँ से प्रारम्भ हुईं? वास्तव में जब कभी प्रारम्भ की बात होती है तो कोई उत्तर नहीं मिलता क्योंकि पीछे आप जाते-जाते वेदों तक जाते हैं या फिर उसके पीछे हड़प्पा की संस्कृति आपके सामने है। उसका भी एक अनन्त विस्तार है, उसमें भी बहुत सारी चीजें मिलती हैं। लेकिन उसकी जो लिखावट है उसको अभी पहचाना नहीं गया है। एक तरह से वह मूक संस्कृति है। कितनी अजीब बात है! हजारों चीजें मिलती हैं। व्यापकता मिलती है, बंदरगाह मिलता है लोथल का, व्यापार के क्षेत्र मिलते हैं, मेसोपोटामिया में अवशेष मिलता है, लेकिन फिर भी संस्कृति को हम मूक कहते हैं, क्योंकि इसकी भाषा का पता नहीं लगा है। चिह्न हैं लेकिन हम समझ नहीं पाये, सब कुछ होते हुए भी मूक है और जैसे भाषा पता लगती है, मुखर होती है, लगता है कोई बोल रहा है, कौन बोल रहा है? वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ लगते हैं और उनमें वो बोलते हैं। वेद स्वयं कहता है कि मैं कम से कम तीन स्तरों पर समझा जा सकता हूँ। भाग्य की ये कैसी बात है कहने वाला ये कह रहा है कि मैं तीन स्तरों पर समझा जा सकता हूँ। यही नहीं, इसके बाद जैसे ही हम थोड़ा आगे बढ़ते हैं और पता चलता है कि वेद को समझने की समस्या आज की नहीं, बड़ी पुरानी है पहला ही ग्रन्थ **यास्क** का **निरुक्त** जो वेद को समझने की कोशिश में निकला है, वो बताता है कि वेद को समझने के लिए कई शब्दों का एक ही अर्थ होता है और एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। कैसी समस्या है जब संस्कृति, सभ्यताएँ मुखर होती हैं, तब भी समस्या रहती है—उनको कैसे समझें? ये समझने की परिपाटी बड़ी पुरानी है। कम से कम ये तो मानते हैं कि जो लोग

संस्कृति और सभ्यताओं की हज़ारों साल की कहानी को इसी तरह देखना चाहिए, और आगे बढ़ाना चाहिए। पर, आज मनुष्य के सामने समस्या यह है कि वह इन विभिन्न सभ्यता और संस्कृतियों से क्या ले, क्योंकि आज वह अपने को मनुष्य के रूप में अधिकाधिक देखने लगा है और यह रूप किसी संस्कृति-विशेष से ही सम्बन्धित होता है। इस चेतना ने आज मनुष्य में उस समस्या को जन्म दिया है जिसकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। संस्कृतियों की बात करते ही भारत की, चीन की, ग्रीस की, पश्चिम की, अरब देशों की, और शायद अफ्रीका की भी बात होने लगती है। लेकिन आज यह बात अटपटी लगती है, क्योंकि धीरे-धीरे मनुष्य को ये लगने लगा है कि ये संस्कृतियाँ कितनी ही अलग-अलग हों, आज वह इन सबका उत्तराधिकारी है; इस चेतना को फैलने में समय लगेगा लेकिन ये फैलेगी ज़रूर, क्योंकि यह ईमानदारी से कहना मुश्किल है कि 'मैं' किसी संस्कृति विशेष का ही सदस्य हूँ। विज्ञान और वाणिज्य ने संसार को जिस तरह 'एक' करने की कोशिश की है उससे एक नई चेतना का जन्म होता दिखाई देता है। यही नहीं, आज जब हम मनुष्य के अधिकार की बात करते हैं तो किसी मनुष्य-विशेष की नहीं करते। बात स्त्रियों के अधिकार के बारे में हो, प्रकृति के बारे में हो, या और भी ऐसी बहुत सी बातों के बारे में।

इस नई चेतना का मनुष्य की पुरानी संस्कृतियों से क्या रिश्ता बनेगा और वह आगे के लिए कैसे सोचेगी और किस प्रकार अपना कर्त्तव्य निभायेगी, ये किसी को स्पष्ट नहीं है। लेकिन इस पर सोचना, इसके बारे में बहस करना और इसके संदर्भ के बारे में बात करना हमारा जो हो चुका है और जो होने वाला है उसके प्रति दायित्व तो है ही। इसमें वेदान्त की दृष्टि एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, इसमें शायद ही किसी को संदेह होगा। पर, वह वेदांत न शंकर का होगा, न रामानुज, न मध्व का, न वल्लभ का। अगर हो, तो विवेकानन्द का होगा, दृष्टि को भी नया रूप देना पड़ेगा और आज की दृष्टि यही सत्यवादी चुनते हैं।

❑

वर्तमान के संदर्भ में अतीत की प्रासंगिकता

सागर और भोपाल के बीच रायसेन का जो इलाका है, वहाँ आज से बीस हजार वर्ष पहले या इससे कम-ज्यादा, कुछ लोगों के रहने का, जिन्होंने वहाँ चित्र बनाये हैं, पता लगता है। आदमी अभिव्यक्ति करता है अपने को चित्रों में, आदमी अनेकानेक चीजों में अपने को अभिव्यक्त करता है। चित्र में ही नहीं काव्य में भी, संगीत में, दर्शन में, साहित्य में बहुत सारी चीजों में; तो ये अभिव्यक्ति की परम्परा क्या है? आदमी क्या करना चाहता है? क्या कहना चाहता है? जब हम इस पर विचार करते हैं, तो एक दरवाजा खुलता है। हम बहुत पीछे जाते हैं कि आखिर परम्पराओं का प्रारम्भ कहाँ से हुआ? ये जो अभिव्यक्ति की परम्पराएँ हैं, ये कहाँ से प्रारम्भ हुईं? वास्तव में जब कभी प्रारम्भ की बात होती है तो कोई उत्तर नहीं मिलता क्योंकि पीछे आप जाते-जाते वेदों तक जाते हैं या फिर उसके पीछे हड़प्पा की संस्कृति आपके सामने है। उसका भी एक अनन्त विस्तार है, उसमें भी बहुत सारी चीजें मिलती हैं। लेकिन उसकी जो लिखावट है उसको अभी पहचाना नहीं गया है। एक तरह से वह मूक संस्कृति है। कितनी अजीब बात है! हजारों चीजें मिलती हैं। व्यापकता मिलती है, बंदरगाह मिलता है लोथल का, व्यापार के क्षेत्र मिलते हैं, मेसोपोटामिया में अवशेष मिलता है, लेकिन फिर भी संस्कृति को हम मूक कहते हैं, क्योंकि इसकी भाषा का पता नहीं लगा है। चिह्न हैं लेकिन हम समझ नहीं पाये, सब कुछ होते हुए भी मूक है और जैसे भाषा पता लगती है, मुखर होती है, लगता है कोई बोल रहा है, कौन बोल रहा है? वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ लगते हैं और उनमें वो बोलते हैं। वेद स्वयं कहता है कि मैं कम से कम तीन स्तरों पर समझा जा सकता हूँ। भाग्य की ये कैसी बात है कहने वाला ये कह रहा है कि मैं तीन स्तरों पर समझा जा सकता हूँ। यही नहीं, इसके बाद जैसे ही हम थोड़ा आगे बढ़ते हैं और पता चलता है कि वेद को समझने की समस्या आज की नहीं, बड़ी पुरानी है पहला ही ग्रन्थ **यास्क** का **निरुक्त** जो वेद को समझने की कोशिश में निकला है, वो बताता है कि वेद को समझने के लिए कई शब्दों का एक ही अर्थ होता है और एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। कैसी समस्या है जब संस्कृति, सभ्यताएँ मुखर होती हैं, तब भी समस्या रहती है—उनको कैसे समझें? ये समझने की परिपाटी बड़ी पुरानी है। कम से कम ये तो मानते हैं कि जो लोग

प्राचीनता के आग्रही नहीं हैं, वे भी हड़प्पा को ढ़ाई हजार साल का, इससे पहले तो रखते ही हैं। वेदों को डेढ़ हजार साल। जरा सोचिये आज उन्नीस सौ सत्तानवे समाप्त होने वाला है। आज इसकी चर्चा कि हमारी शताब्दी समाप्त होने वाली है। एक नई शताब्दी का प्रारम्भ होने वाला है। वैसे काल में अपना कोई व्यवधान नहीं होता, काल में एक स्वतंत्र प्रवाह है। लेकिन बढ़ता भी है, दिन और रात होते है। इसी प्रकार से वर्ष भी बीतता है, क्योंकि वर्ष में अनेक ऋतुएँ होती हैं जो लौटती हैं। काल एक आजीवन चीज है वह आगे बढ़ता है और लौट-लौट कर अपने को आगे बढ़ाता है। कैसी अजीब चीज है। दिन और रात होते हैं, वहीं बसन्त, शरद, ग्रीष्म, वर्षा लौटती हैं, फिर उसी लौटने से काल आगे बढ़ता है। मैं आपके सामने जो सवाल उठाना चाहता हूँ, वो ये है कि नई शताब्दी का प्रारम्भ होने वाला है, एक नई सहस्राब्दी का प्रारम्भ होने वाला है। कम से कम दो हजार-तीन हजार साल जो बीत चुके हैं, जिसके बारे में कुछ हमें पता है वो इतने लोग नहीं हैं जो बोलते हैं। इसमें अनेक लोगों ने लिखा, लिखा ही नहीं अनेक चीजें हैं। मंदिर बनाये हैं, मूर्तियाँ बनाई हैं, गाना गाया है, नाचे हैं, सब कुछ किया है, उस संस्कृति और सभ्यता के आप उत्तराधिकारी हैं, हम उत्तराधिकारी हैं। कभी आपने सोचा कि वो 3000 साल—यदि आप हड़प्पा को मानें तो कम से कम 5000 साल या इससे अधिक हो सकता है, वो 5000 साल के जो सतत् प्रयत्न हैं, किसका प्रयोग है, कह नहीं सकते, अनेकानेक व्यक्तियों का, अनेकानेक पीढ़ी दर पीढ़ी का, एक पीढ़ी ने कुछ किया छोड़ दिया और फिर दूसरी ने कुछ किया, फिर तीसरी। आप लोग विश्वविद्यालय में हैं, हम लोग भी रहे हैं। ये पढ़ना, पठन-पाठन की प्रक्रिया है क्या? ये कोई डिग्री लेना नहीं है, नौकरी का बहाना तो अर्थ चक्र है, हम सब उसमें हैं लेकिन वो वैसे ही चक्र चलता है जैसे अन्य चक्र चलते हैं काल के, लेकिन उन चक्रों के द्वारा जो आगे बढ़ते हैं वो क्या हैं? मैं उस ओर आपका ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा करूँगा। बात के अनेक आयाम हैं, हर जगह खोला जा सकता है, लेकिन कुछ जगह ही में खोलूँगा। आखिर पुरानी तस्वीर कैसे बनती है हमाने मन में, जो 5000 साल की तस्वीर है वो कैसे आई? किसने बनाई? इन्हीं लोगों ने बनाई है, किसने बनाई? वो तस्वीर पश्चिमी विद्वानों ने बनाई है। ये एक बात है समझ लीजिए कि हमारी संस्कृति सभ्यता की तस्वीर पश्चिम के विद्वानों ने बनाई है। उसका भी एक लम्बा इतिहास है। कैसे बनाई? क्यों बनाई? लेकिन हमारी ही नहीं, सारी दुनिया की तस्वीर। हमारी ही सभ्यता नहीं चीन की भी सभ्यता है हमसे भी थोड़ी पुरानी, विशाल सभ्यता है, जिसके बारे में हम सोचते ही नहीं न बात ही करते हैं, और भी सभ्यताएँ हैं लेकिन सारी दुनिया की सभ्यताओं की तस्वीर उन लोगों ने बनाई, पश्चिम के विद्वानों ने, और हमारी यूनीवर्सिटी, कॉलेज, स्कूल उसी तस्वीर को दोहराते रहते हैं, उसमें थोड़ा-बहुत जोड़ते रहते हैं। वैसे हमने अपनी तस्वीर नहीं बनाई है। हमारी अपनी कोई तस्वीर ही नहीं है। पश्चिमी सभ्यता का इतिहास हमने नहीं लिखा है। वो अपनी तस्वीर बनाते हैं और हमारी

भी बनाते हैं। तो हम ये समझते हैं कि 5000 साल की ये तस्वीर किसी दूसरे की बनाई हुई है। वैसे तो कोई दूसरा नहीं है संसार में, वो भी विद्वान् हैं। लेकिन एक इंबैलेंस या असन्तुलन जिसको हम कहते हैं, अगर हम भी तस्वीर बनाते होते उनकी, तो एक बराबरी का रिश्ता होता और कई तस्वीरें बनतीं, लेकिन ऐसा नहीं है। अब जरा देखिए—ये जो तस्वीर बनाने की बात है जरा सोचिए तस्वीर क्या है? मैं आपको दो-तीन बात कहता हूँ, मैं इतिहास का विद्यार्थी नहीं हूँ और विद्यार्थी किसी चीज का नहीं, और सब चीजों का हूँ। मैंने इतिहास देखना शुरू किया और तरह से, वैसे पढ़ाते हैं ही सब लोग, लेकिन अन्य दृष्टि से देखना जब शुरू किया तो इतना आश्चर्य हुआ कि आखिर हमें ये क्या पढ़ाया जा रहा है, ऐसा पढ़ाया जा रहा है जो बिल्कुल झूठ है, जो बिल्कुल तस्वीर बन ही नहीं सकती उस तरह से।

मैं ऐसे क्षेत्र से प्रारम्भ करता हूँ आपके सामने, जिसको देखने पर मुझे स्वयं ताज्जुब हुआ और जिस क्षेत्र के बारे में मुझे थोड़ा सा ज्ञान है, वो दर्शन के इतिहास का है—भारतीय दर्शन के इतिहास का। भारतीय दर्शन के इतिहास में, वेद हैं, उपनिषद् हैं, फिर सूत्र ग्रन्थों की रचना होती है, बड़े प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, मीमांसा है, ब्रह्मसूत्र है, न्यायसूत्र है, वैशेषिक सूत्र है। इनके ऊपर भाष्य लिखे जाते हैं और छह दर्शन बताये जाते हैं, आप जरा सोचिए। मुझे ये देखकर ताज्जुब हुआ कि वो ब्रह्मसूत्र जिसको प्रस्थान-त्रयी में गिना जाता है, जो इस देश की बौद्धिक, वेदान्तिक परम्परा के मूल स्रोत माने जाते हैं, वास्तव में उनका महत्त्व ही नहीं था। पहली सहस्राब्दी में पहली बार भाष्य लिखा जाता है। ब्रह्मसूत्र के लिखने के बाद उसकी कोई चर्चा ही नहीं है। शंकर का भाष्य पहला भाष्य है। **गौडपाद** ने माण्डूक्यकारिका लिखी थी, लेकिन वह स्वतंत्र ग्रन्थ है। ये माना जाता है कि शंकर ने बौद्धों को परास्त कर दिया, शंकर ने दिग्विजय किया। हम भी यही सुनते, पढ़ाते थे। आप देखिये मुझे आश्चर्य हुआ शंकर का कोई प्रभाव है ही नहीं। अगर हम उनके जो तत्काल अनुयायी हैं उनको छोड़कर, शंकराचार्य का प्रभाव सदियों तक नहीं होता, होना शुरू होता है किन्तु कब होता है? जब पहले मैंने देखा मुझे खुद विश्वास नहीं हुआ। मैंने एक लेख लिखा है—वेदान्त इन दि फर्स्ट मिलेनियम ए.डी. – ए रिट्रोस्पेक्टिव्ह इल्यूजेन इम्पोज्ड बाय दि हिस्टोरियोग्राफी ऑफ इण्डियन फिलॉसिफी' मैं चाहूँगा आप उसे पढ़ें। भारतीय दर्शन के इतिहास में एक अध्यास आरोपित किया गया है। पर इतिहासकारों में **राधाकृष्णन्** हैं, दुनिया के और भी अध्येता हैं। इन लोगों ने उस इतिहास पर एक अध्यास आरोपित किया कि वेदान्त-अद्वैत वेदान्त ही वास्तव में भारत का प्रमुख दर्शन रहा है, जबकि ऐसा कहीं भी नहीं था। जब **हरिभद्रसूरी** अपना पहला ग्रन्थ लिखते हैं दर्शन के विविध दर्शनों का परिचय देने के लिए, उसमें वेदान्त का नाम ही नहीं है और हरिभद्रसूरी आठवीं सदी में हुए, पर उनके काल तक वेदान्त की कुछ स्वतंत्र

सत्ता नहीं थी, प्रतिष्ठा नहीं थी। पर हम जो पढ़ाते हैं हम जो तस्वीर बनाते हैं, भारतीय दर्शन की, उससे बिल्कुल अलग है।

अभी जिस जर्नल का मैंने नाम लिया उसमें वह लेख 'इण्डियन फिलॉसफी इन दि फर्स्ट मिलेनियम ए.डी. फेक्ट एण्ड फिक्शन' आप पढ़िए। मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ कि खाली वेदान्त का ही कोई स्थान नहीं है, बाकी सब दर्शनों का भी कोई स्थान नहीं है। जितने वैदिक परम्परा के दर्शन हैं, उनका महत्त्व है, लेकिन उनके बारे में बनाई गई तस्वीर गलत है। वास्तव में बौद्धों का राज्य है। अगर बौद्ध दर्शन के जो ग्रन्थ लिखे गये हैं और बौद्ध दार्शनिकों के नाम जो मौजूद हैं, उन सबको मिलाकर देखिए तो आश्चर्य होगा, अगर 400 बौद्ध दार्शनिक हैं तो बाकी सब मिलाकर 100 भी नहीं बनते। अगर हम पहली शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक के दार्शनिकों के नाम और ग्रन्थ जिनका पता है, जो छप चुके हैं, लें तो जो तस्वीर उभरती है वो दूसरी है। बौद्धों का साम्राज्य है। वो छाये हुए हैं क्वालिटी में और क्वांटिटी में भी। बौद्ध लोगों को शंकर ने नहीं हराया है, बौद्ध लोग कब समाप्त होते हैं? बौद्ध ग्रन्थ लिखना कब समाप्त होता है इस देश से, 1200 ई. के बाद। इतिहास देखिए 1200 तक हमारे यहाँ बौद्ध ग्रन्थ लिखे जाते रहे, संख्या में और गुणवत्ता में वो किसी से कम नहीं हैं। संख्या में ज्यादा हैं और गुणवत्ता में बराबर हैं या थोड़े अधिक। बौद्ध दर्शन समाप्त होता है नालन्दा में, बख्तियार खिलजी उनके विश्वविद्यालय को तोड़ता है। उसके पहले तक कम से कम बौद्ध दार्शनिकों का बोलबाला था। अब बताइये क्या तस्वीर है? अगर ये तस्वीर उभारी जाये, तो बौद्ध लोग केन्द्र में होंगे, बौद्ध दार्शनिक केन्द्र में होंगे और बाकी सब जो हैं उनके विरोध में हैं। वो बौद्धों के खिलाफ क्या कह रहे हैं, या उनके प्रतिरोध में अपनी क्या रचना कर रहे हैं—इसी से इतिहास बना है दर्शन का, जो पहली सहस्राब्दी में हम देखते हैं। जब बौद्ध लोग खत्म हो जाते हैं, तो नया खेल शुरू होता है। जिसमें अद्वैत वेदान्त केन्द्र में है और अद्वैतवादी तथा द्वैतवादी के बीच बहस चल रही है। वह कहानी दूसरी है। फिर नैयायिक आते हैं। तो जो तस्वीर हम बना रहे हैं, पढ़ा रहे हैं वह ही गलत पढ़ा रहे हैं। दूसरी तस्वीर देखिए, पता नहीं आप लोगों ने पढ़ा होगा, हमने भी वही पढ़ा है कि गजनी आया, 1000 ई. में उसने सोमनाथ को तोड़ा, गजनी के बाद गौरी आया, गौरी ने पृथ्वीराज को हराया। फिर गुलामवंश हुआ फिर खिलजी, फिर सैय्यद, फिर लोदी, फिर मुगल, ये ही तो कहानी सुनते हैं आप। अगर आप पूछिये इतिहास से कि तुगलक ने कितने साल हुकूमत की दिल्ली में, खिलजी ने कितने, लोदी ने कितने साल की तो आपको आश्चर्य होगा कि किसी ने 70 साल, किसी ने 30 साल की। उनका राज्य कहाँ तक था? कभी ग्वालियर, कभी ग्वालियर से कम, कभी थोड़ा फैला कभी वापिस आ गया। आपको पता है चोल ने कितने साल राज्य किया? 400 वर्ष। चोल साम्राज्य कितना विशाल था? चोलों ने लंका पर हमला करके वहाँ 70 साल तक

राज्य किया। उसके बाद उन्हें निकाल दिया गया। चोल इण्डोनेशिया तक गये, चोल राजा मशहूर रहे उन्होंने 400 साल तक राज किया। किन्तु वह आपकी तस्वीर में है ही नहीं, बड़े से या छोटे से। और तुगलक, सैय्यद, लोदी, खिलजी ये आपकी तस्वीर में बैठे हुए हैं। दिल्ली के चारों तरफ जो तुर्कों या अफगानों का शासन है, मुगल शासन है, वह आपके केन्द्र में बना है। आपके विचार में बना हुआ है। 1000 ई. के बाद तो बड़े मंदिर बने हैं। सारा खजुराहो उसके बाद बना है। 1000 ई. के बाद तो हिन्दुतान में इतनी बड़ी बौद्धिक परम्पराओं का विकास हुआ है कि आप विश्वास नहीं कर सकते। सारे आचार्य बाद में हुए हैं। **यामुनाचार्य** 11वीं शताब्दी में हुए हैं। उसके बाद **रामानुज, मध्व, वल्लभ** हैं, तो क्या तस्वीर आप बना रहे हैं? विजयनगर का साम्राज्य 250 साल तक जारी रहा। मुगल साम्राज्य कितने साल तक जारी रहा? बाबर, हुमायूँ की बात तो दूर की है असली खेल तो अकबर से शुरू होता है। अकबर का प्राधान्य होता है। विजयनगर साम्राज्य कब खत्म होता है? 1567 में, 250 साल हुकूमत करने के बाद। पर न हम चोल की बात करते हैं न ही विजयनगर की। हम बात ही नहीं करते, हमारे पास तस्वीर ही नहीं है। मैंने आपको दो मिसालें दीं। अब तीसरी मिसाल देता हूँ—हमें क्या हो गया है? हम तस्वीर क्या बना रहे हैं? एक तस्वीर हमारे सामने दी जाती है कि जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता है उसका वास्तव में ह्रास हुआ है। कोई कहता है हर्ष के बाद से, कोई कहता है गुप्त साम्राज्य के बाद से, कोई खींच कर लाता है तो 1000 ई. तक लाता है। जब से मुसलमानों का राज्य हुआ यहाँ ह्रास हो गया। 1567 ई. तक तो विजयनगर है। ह्रास किसे कहते हैं? न्याय का जो दर्शन है, यानि आप प्रतिष्ठा देखिए चिन्तन की, 14वीं शताब्दी में **गंगेशोपाध्याय** हुए, जिन्होंने न्याय दर्शन की सारी विचारपद्धति में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया। **जयदेव** 13वीं शताब्दी में हुए, गीतगोविन्द लिखते हैं। सारा देश बदल जाता है। संगीत में और नृत्य में जगत् खुलता है। बंगाल में उसकी रचना होती है। और सारे देश में फैल जाती है। सारे देश का संगीत व नृत्य एकदम बदल जाता है। आज भी आप कहीं भी जाइये मन्दिरों में जयदेव के गीत पर आदमी गाते और नाचते हैं। ये जो तस्वीर बनती है 1000 ई. के बाद की ये आश्चर्यजनक है। हर क्षेत्र में आश्चर्यजनक है कि विशाल मंदिर बनते हैं, भुवनेश्वर जाइये देखिए, हरिद्वार तो पास में ही है, तो क्या हो रहा है? तो सारा जो साहित्य है हमारा प्रान्तीय भाषाओं में तमिल को छोड़ दें, वो 1000 के बाद उठता है। सारे आचार्य, सारा नृत्य, न्याय, नव्य व्याकरण। तो देश में जो नवजागरण हो रहा है, वह 1000 ई. के बाद हो रहा है। और आप कह रहे हैं ह्रास हो रहा है। तो ये तस्वीर बनाने वाले कौन हैं, जिन्होंने हमको ये सिखा दिया कि हम अपने 'Past' पर रोते ही रहें और उसको याद करते रहें कि कोई स्वर्णयुग था। गुप्त राजाओं के जमाने में, मौर्य राजाओं के जमाने में या अशोक के जमाने में या वेदों के जमाने में या उपनिषदों के जमाने में, तो मैं आपसे ये बात कहता हूँ कि जो 5000 साल का

लिखित इतिहास हमारे पास है, जिस परम्परा के हम उत्तराधिकारी हैं, जो संस्कृति हमारी रही है, वो कोई दो-चार शताब्दी में खत्म नहीं हो सकती। संस्कृति की जो खोज है आदमी की, जो परम्पराएँ हम देखते हैं, वे क्या हैं। 100 साल इधर 100 साल उधर जब हम जीते हैं तो बहुत लगता है। पर संस्कृति के इतिहास में तो 100 क्या, 400 साल भी कुछ नहीं होते। हम अपनी संस्कृति के बनाये हुए हैं। यह ठीक है कि हम उस संस्कृति से विलग हो गये हैं—ये अन्य प्रश्न है। हमारा अन्य संस्कृतियो से क्या सम्बन्ध है ये भी दूसरा प्रश्न है। लेकिन इतनी बात कम से कम साफ है कि आज जो नया युग बन रहा है, एक उदार युग, एक नई संस्कृति और सभ्यता बन रही है वह क्या है। भारत के काफी स्थानों पर मुस्लिम लोगों का आधिपत्य था काफी दिनों तक, सभी जगह नहीं था, किन्तु काफी दिनों तक था। लेकिन उससे हमारी बौद्धिक संस्कृति को या मूल संस्कृति को कभी आघात नहीं पहुँचा। अगर आप देखें 1000 से 1700 ई. तक, 1707 में औरंगजेब की मृत्यु होती है और 1750 तक मुगल साम्राज्य में कोई दम नहीं रहता है। तो अगर आप 1000 ई. से लें, वास्तव में तो 1200 ई. से लेना चाहिए कहीं से भी लें 1700 ई. तक इस बात को मत भूलिए कि मुस्लिमों का कई क्षेत्रों में राज्य नहीं था, जैसे मैंने बताया कि दक्षिण में काफी दिनों तक,आप सोचिए कि जब राज्य किसी ऐसी संस्कृति के शासक वर्ग के हाथ में हो जिसकी जड़ें हमारी संस्कृति में नहीं हैं। हमारी संस्कृति का मतलब हम ये नहीं कह रहे कि मुसलमानों का कोई योगदान नहीं। ये अलग बात है। लेकिन उस संस्कृति में उनकी जड़ें नहीं हैं, जो उनके आने से पहले यहाँ थीं। उनकी कोई बौद्धिक चुनौती नहीं थी। एक समझने की बात है, हालांकि इस्लाम धर्म भारत में 800 साल से अधिक तो था ही लेकिन उसकी बौद्धिक चुनौती नहीं है कहीं। लेकिन आज जो चुनौती है वह बौद्धिक है। पश्चिम की जो सभ्यता है आप हम सब उसके मानसपुत्र हैं। पश्चिम की सभ्यता की ये चुनौती भी है जो संचार माध्यमों में दिखती है। और बौद्धिक चुनौती है सारे संसार में वह छाई हुई है। हमारे सामने समस्या क्या है कि जो संस्कृति है आपकी, जिसका कम से कम 5000 साल का इतिहास है और 3000 साल का लिखा हुआ इतिहास है, वो संस्कृति अगले हजार साल में अपने को कैसे उपस्थापित करेगी? नई चुनौतियों का वरण किस रूप में करेगी? ये जो आज विश्व सभ्यता ने सांस्कृतिक और बौद्धिक चुनौतियाँ हमारे सामने रखी हैं, एशिया की सारी संस्कृतियों को उसका उत्तर देना है। यह उत्तर हम कैसे देंगे? सार्थक उत्तर तभी दिया जा सकता है, जब तस्वीर बदले। तस्वीर कैसे बदलेगी? हमको तस्वीर बनाना है। अब मैं दो बात कहूँगा। पुरानी चीजों की जो बात करते हैं, तीन तरह से करते हैं। एक बूढ़े लोगों से जो जब भी मिलते हैं तो कहते हैं—जब हम थे तो देखते क्या था। इसका मतलब है वो बेकार हैं जो बूढ़े हो चुके हैं। दूसरे वे लोग हैं जो मुफलिस हैं उनके पास कुछ नहीं है वो सोचते हैं कि हमारे बाप क्या करते थे, वे उन बाप दादाओं की कहानी सुनाते रहते हैं कि उनके पास क्या कुछ नहीं था।

अगर आप गरीब हो गये हैं तो उसके गान गाने से कोई फायदा नहीं है कि पहले आप क्या थे और आपके पूर्वज क्या थे? होंगे कुछ, उन्होंने बड़ी-बड़ी बातें की, लेकिन आप क्या हैं? तो मैं इस दूसरी बात को बेकार मानता हूँ। तीसरी बात जिसको मैं महत्त्व देता हूँ वह यह है कि हम पीछे कब जाते हैं, क्यों जाते हैं? इसलिए जाते हैं कि हमें आज कुछ करना है। आप जानते हैं कि पश्चिम के लोग जो स्वतंत्र हैं, स्वतंत्र मतलब पॉलिटिकल नहीं हैं, बौद्धिक रूप से, चेतना से, वो संसार से कहीं से कुछ भी ले सकते हैं उनको शर्म नहीं आती क्योंकि उनको अपने पर विश्वास है। हमारा जो बौद्धिक वर्ग है उसका अपने ऊपर कोई विश्वास ही नहीं है। इसलिए हम भारतीय चिन्तकों की बात ही नहीं करते हैं, हम केवल पश्चिम के विचारकों की बात करते हैं जबकि पश्चिम का आदमी, आप देखिए उन्होंने क्या किया है वे कहते हैं, सारी संस्कृति और सभ्यताओं को समझना चाहिए और उनकी जो उपलब्धियाँ हैं उनको इकट्ठा करना चाहिए। आज आप सुनते हैं कि आयुर्वेद में पश्चिम में काम हो रहा है, योग पर पश्चिम में काम हो रहा है, 'ज़ेन' पर पश्चिम में काम हो रहा है। कोई भी चीज हो पश्चिम का आदमी घबराता नहीं है क्योंकि वो उनका उपयोग कर सकता है। कहीं से भी कोई चीज मिले उसे हम अपना बनायेंगे और नई दिशा में ले जायेंगे। जब तक ये वृत्ति हमारी चेतना में उत्पन्न नहीं होती अपनी संस्कृति की उपलब्धियों के प्रति, तब तक हम दोहराते रहेंगे। ये दोहराना हमारी सबसे बड़ी बीमारी है। हम खुद नहीं सोचते हैं। किसी ने कोई प्रश्न उठाया था पुरुषार्थ के बारे में। जब भी बात की जाती है हमारे यहाँ, तो चार पुरुषार्थ की बात की जाती है। कोई पाँचवाँ पुरुषार्थ नहीं है। परम्पराओं की ओर देखते हैं, खुद नहीं सोचते, कहते हैं भक्ति को कहा था पंचम पुरुषार्थ। हाँ, ये भी झगड़ा था कि तीन पुरुषार्थ हैं कि चार। एक प्रत्यय है, विचार है। मनुष्य के जीवन को क्या चीज अर्थ प्रदान करती है, ये प्रश्न है, आप स्वयं सोचिए बुद्धि का पुरुषार्थ क्या होता है? तो हम पढ़ते-लिखते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं। वह ज्ञान नहीं जो वेदान्त में होता है, नित्य-अनित्य के विवेक की बात नहीं कर रहे हैं। हम उस ज्ञान की बात कर रहे हैं जो व्यवहार जगत् का ज्ञान है। इसमें भी सत्य असत्य होता है। इसमें भी उचित अनुचित होता है। ये जो ज्ञान है जो आप पढ़ा रहे हैं, ये लोग पैसा कमाने के लिए, अर्थ के लिए काम करते हैं ये तो व्यवसायी हैं उनका पुरुषार्थ बुद्धि का पुरुषार्थ नहीं है। जो हम कर रहे हैं वास्तव में पढ़ा रहे हैं पढ़ रहे हैं, हम किसी आदर्श की मूल्य प्राप्ति के लिए कर रहे हैं, वो आदर्श क्या है? वो अलग पुरुषार्थ है। इन चार पुरुषार्थ में नहीं आता। तो इसका मतलब पुरुषार्थों की संख्या अधूरी है। तो ये हमारा उत्तरदायित्व है कि हम नये पुरुषार्थ के बारे में सोचें, लोगों को बतायें। यही बात वास्तव में प्रत्येक विचार की है जो आपको परम्परा से मिला है। गुण तीन होते हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। चौथा तो नहीं होता है, तो हमको क्या हो गया है? हम दोहराते रहते हैं। हमारे से पहले लोग थे, दोहराते नहीं थे। आप सोचिए कि वार्तिक का लक्षण यह

दिया गया है—**उक्तमुनक्तं दुरूक्तं च वार्तिकम्**। जब कोई वार्तिक लिखने बैठता है तो उसका कार्य क्या है, कि वो ये बताये कि पहले जो आदमी था जिसके ग्रन्थ पर वार्तिक लिखा जा रहा है, उसने क्या कहा, क्या नहीं कहा, अनुक्तम् उसमें व्यंजित है, लेकिन उसका यह भी कर्त्तव्य है कि वो बताये कि उसने क्या गलत कहा—दुरुक्त। अब आप सोचिये कि शंकर पर सुरेश्वर वार्तिक लिखता है, और वार्तिककार का धर्म है कि वो बताये दुरुक्तम्। जरा सोचिए कि शंकर ने सुरेश्वर से कहा था कि तुम हम पर वार्तिक लिखो। ये परम्परा थी कि गुरु शिष्य से कहता है कि तुम गलती बताओ मेरी। इसी प्रकार उद्योतकर ने वार्तिक लिखा न्यायवार्तिक। न्याय में वार्तिक नाम से वही प्रसिद्ध है। तो आज की जो परम्परा है उसके प्रति आपका उत्तरदायित्व क्या है? उसकी गलती बताना, उसकी कमियाँ ढूँढ़ना, उसको आगे ले जाना।

यह सब आज के परिप्रेक्ष्य में करना है और आज के विचार के परिप्रेक्ष्य में कहना है। तभी आपकी संस्कृति जीवन्त होगी, आप नये सवाल पूछेंगे तो नये उत्तर मिलेंगे। पश्चिमी परम्परा की जो तस्वीर आपने बनाई है, पश्चिमी परम्परा ने जो तस्वीर अपनी बनाई है, उसमें वे बुद्धि पर विश्वास करते हैं और ये कह दिया कि आप सब लोग जो हैं आप लोग शुद्ध बुद्धि पर विश्वास नहीं करते, तर्क में विश्वास नहीं करते। आप तो धार्मिक श्रद्धा वाले हैं, आपको विश्वास है, श्रद्धा है, भक्ति है। लेकिन वह **सुकरात**, जो तर्क के लिए प्रसिद्ध है, वह जब मरता है तो क्या कहता है? अपने मित्र से कहता है—देखो दो काम करना। मैंने एक मनौती मनाई थी—मेरा ये काम हो जायेगा तो मैं एक मुर्गे की बलि दूँगा देवी पर। वो मैंने दी नहीं है, पर तुम दे देना मेरे नाम पर। अब आप सोचिए कि ये बुद्धिनिष्ठता कैसी थी? लेकिन पश्चिम के दर्शन का इतिहास इस पर जोर नहीं देगा कि उनका आदर्श दार्शनिक यह कहता है कि मैंने एक मनौती माँगी थी, वो मैंने नहीं की है तुम जरूर करना। क्या उसको देवी-देवताओं पर विश्वास नहीं था? क्या वह प्रार्थना नहीं करता था? क्या वो यह नहीं कहता था कि ऐसा हो जाये तो चढ़ावा चढ़ा देंगे? आप **देकार्ते** को लीजिए। हमें पढ़ाया जाता है कि देकार्ते रेशनलिज़्म का दार्शनिक है। वह आधुनिक दर्शन का पिता है। उसे आप पढ़िये तो आपको आश्चर्य होगा कि उसने ये मनौती की थी कि मैं पैदल चलकर जाऊँगा उस देवी के स्थान पर। **न्यूटन** जो इतना बड़ा वैज्ञानिक था वह इस पर विश्वास करता था कि नरक होता है। नरक का स्वरूप कैसा होता है? बहुत कुछ इन चीजों पर उसने लिखा है। पश्चिम का व्यक्ति इतिहास जब लिखता है उस इतिहास में वो बातें नहीं लिखता, जो उनकी तस्वीर को गलत साबित करें और हमारी जो तस्वीर बनाते हैं उसमें वही बात उभारते हैं जो उनकी दृष्टि में हमारी कमजोरी है और जो हमारी दृष्टि में भी हमारी कमजोरी बनी है। इसलिए हमें बार-बार सिखाया जाता है कि गुप्तकाल के बाद से इस देश में संस्कृति अध:पतन की ओर जा रही है। हमारे

दर्शनशास्त्र में बताया जाता है कि ये आस्तिक दर्शन हैं और ये नास्तिक दर्शन है। नास्तिक दर्शन में, बौद्ध लोग हैं, चार्वाक लोग हैं, जैन लोग हैं। आस्तिक दर्शन में षड्दर्शन हैं और यही हम दोहराते हैं। ये भेद बनाया हुआ है। आप सोचिए देखिए कि हम लोग एक अजीब दुनिया में रहते हैं। भेद वैदिक अवैदिक का जरूर है, आस्तिक नास्तिक का नहीं है। एक मिसाल देता हूँ—न्याय को आप आस्तिक दर्शन मानते हैं, पढ़ाते भी हैं। लड़का लिखता है तो पूरे नम्बर देते हैं और आप देखिए गौतम न्याय सूत्र में क्या कर रहे हैं, तो आपको आश्चर्य होगा कि वो शब्द प्रमाण को मानते हैं, इसका लक्षण क्या बताते हैं **आप्तोपदेश: शब्द:** कभी आप विद्यार्थी से या अपने से नहीं कहते कि ये जो लक्षण है, ये मीमांसा का विरोधी लक्षण है। मीमांसा शब्द को अपौरुषेय मानता है, नित्य मानता है। गौतम उसे पौरुषेय मानते हैं, वह आप्तोपदेश है, उसका उपदेश होना चाहिए। शब्द को अनित्य मानता है। तीस के करीब सूत्र हैं न्यायसूत्र में, जो खण्डन करते हैं, शब्द की नित्यता का। गौतम किसका विरोध कर रहे हैं? जैमिनी का कर रहे हैं कि तुम बिल्कुल गलत हो। श्रुति नित्य नहीं है। श्रुति अपौरुषेय नहीं है। श्रुति मनुष्य का वचन है, श्रुति अनित्य है। लेकिन आप और हम सब मिलकर उस पर परदा डालते हैं। ऐसी मिसालें दी जा सकती हैं, पहला ही पटाक्षेप खुलता है ड्रामा होता है, किसमें होता है? निरुक्त में होता है। निरुक्त में आपको आश्चर्य होगा कि वो पहला विचार क्या है? वाक्य का अर्थ कैसे होता है। संज्ञा प्रधान है कि क्रिया प्रधान है? सभ्यता के उष:काल में कितना सूक्ष्म विचार हो रहा है। अगर क्रिया प्रधान है तो वाक्य की मीमांसा बनेगी। अगर संज्ञा प्रधान है तो ब्रह्मसूत्र बनेगा।

अन्त में, मैं कहना चाहूँगा कि ये हमारी संस्कृति है, 5000 साल की परम्परा है इसको आज के बौद्धिक परिप्रेक्ष्य में बलशाली रूप में आगे लाना होगा और इस तरीके से लाना होगा कि हम लोग तो मानें ही, दूसरे लोग भी मानें, हमें अपने आपको अपनी जीवन्त परम्पराओं से जोड़ना है, जो परम्पराएँ पिछली सदी तक हमारे साथ थीं। आप देखिए कि 1700 ई. के बाद संस्कृत में सैकड़ों नये ग्रन्थ लिखे गये, नया से नया चिन्तन हुआ। संस्कृत शास्त्र लेखन में एकदम नई विधा पिछले 200-300 सालों में विकसित हुई—क्रोडपत्र,पर हमें पता नहीं है, हमारे ही देश में जो कुछ लगातार नया घटित होता चला आया है उसके बारे में। एक दिन वह जागृत होगा, लोगों को उसके बारे में पता चलेगा, तो वह हमारी चेतना का हिस्सा बनेगा। जरूरत इस बात की है कि हम उस चेतना के लिए तैयारी करें। उसके लिए हम पश्चिम की बताई हुई विचार कोटियों में सोचना बंद करें, हम अपनी कोटियों में सोचें और विचार करें।

❑